

# क्या भारतीय मुसलमान पाकिस्तान की इस घटना से सबक लेंगे

पाकिस्तान के अब्दुल वली खान विश्वविद्यालय, मरदान में पत्रकारिता के एक छात्र मशाल खान को अन्य छात्रों ने इसलिए मार डाला, क्योंकि उस पर 'सेक्यूलर' और 'लिबरल' होने का संदेह था। क्योंकि वह शुक्रवार को मस्जिद जाकर नमाज नहीं पढ़ता था। बस, इस संदेह और अपराध में दर्जनों मुस्लिम छात्रों की एक भीड़ ने उसे गोली मारी, नंगा कर उस के शरीर को क्षत-विक्षत किया, फिर कचरे की तरह दूसरी मंजिल से नीचे फेंक दिया।

इस प्रकरण में बुनियादी सवाल है कि अपराधी कौन – मशाल खान या कि उसे मार डालने वाले? पाकिस्तानी कानून के हिसाब से इस का उत्तर आसान नहीं। पाकिस्तान पेनल कोड की धारा 225-सी के अनुसार, 'जो भी व्यक्ति पवित्र पैगंबर के पवित्र नाम को व्यक्त या अव्यक्त शब्द या चित्रांकन द्वारा, या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष मतलब, भावना या इशारे से भी अपमानित करता हो, उसे फाँसी देकर दंडित किया जाएगा।' व्यवहार में वहाँ इस का अर्थ है कि इस्लाम की अवमानना के आरोप में कोई भी दोषी माना जा सकता है। जिस के लिए किसी ठोस प्रमाण की जरूरत भी नहीं है। आखिर किसी 'अव्यक्त' या 'अप्रत्यक्ष' चीज का मतलब ही है कि उस का अस्तित्व दिखाया नहीं जा सकता! मगर ऐसे ही एक कार्य की सजा मौत है। इसलिए यह बात गैर-महत्वपूर्ण हो जाती है कि सजा किस ने दी। इसीलिए, पाकिस्तान में बड़ी संख्या में लोग मशाल को दोषी मानेंगे, न कि उन छात्रों को जिन्होंने मशाल को मार डाला।

प्रश्न है – भारतीय मुसलमानों की क्या स्थिति है? यदि कोई अखबार या शोध संस्थान सर्वेक्षण करे, तभी पता चलेगा कि कितने प्रतिशत मुसलमान यहाँ किसे दोषी मानते हैं। यहाँ के कानून के हिसाब से नहीं, बल्कि इस्लामी मान्यताओं के हिसाब से। क्योंकि मुसलमानों के लिए मूलतः वही महत्वपूर्ण होता है। यह अनेक भारतीय मुस्लिम नेता, मौलाना और बुद्धिजीवी भी बार-बार कहते रहे हैं। फिर यह भी न भूलें, कि पाकिस्तान भी सत्तर साल पहले का भारत ही है। यानी, सवाल पाकिस्तान या भारत का नहीं, बल्कि मुसलमानों की समझ का है। वे क्या गलत और क्या सही मानते हैं?

प्रश्न इसलिए और भी रोचक, बल्कि भयावह हो जाता है क्योंकि भारत, पाकिस्तान और दुनिया भर में ऐसे लाखों-लाख मुस्लिम युवा सेक्यूलर, लिबरल हैं तथा हरेक शुक्रवार मस्जिद जाकर नियमित नमाज नहीं पढ़ते। तो उन का भवितव्य क्या है, या क्या होना चाहिए? यह सब ऐसे सवाल हैं जिन का सामना मुसलमानों को ठंडे दिमाग से करना होगा।

ध्यान रहे, सभी समाचारों के अनुसार मशाल खान ने न तो न प्रोफेट मुहम्मद पर कुछ कहा था, न इस्लाम की निंदा की थी। केवल वह स्वयं इस्लामी विचारों से नहीं चलता था। बस, इसीलिए उसे मार डाला गया। यानी, इस्लाम की शान के लिए एक मुसलमान को दूसरे मुसलमानों ने मार डाला।

जरा सोचें, यह कैसी मजहबी शान है, कौन सी मानसिकता है! निस्संदेह, इस मानसिकता का उस

बरायनाम आतंकवाद से सीधा संबंध है जो सारी दुनिया में जिहाद के नाम से चल रहा है। इसी से आज सारी दुनिया में मुसलमानों का हर कहीं, हर समुदाय से झगड़ा चल रहा है। हर जगह उन के झगड़े के केंद्र में मजहबी जिद ही है। बल्कि जैसा पाकिस्तान का यह उदाहरण भी दिखाता है, कि जहाँ दूसरे लोग नहीं, वहाँ उन का झगड़ा अन्य मुसलमानों से है। अफगानिस्तान, बंगलादेश, सीरिया, ईरान, आदि हर जगह यही दृश्य है। इस झगड़े की जड़ में क्या है ?

केवल यह कि इस्लाम का मूल सिद्धांत किसी अन्य विचार को बर्दाश्त न करना है। उन मुसलमानों को भी बर्दाश्त न करना, जो पूरी तरह इस्लाम से नहीं चलते। यह खुद उस के प्रोफेट द्वारा दिया गया 'तकफ़ीर' का सिद्धांत है। यानी, वैसे मुसलमान को भी खत्म करना जो काफ़िर हो गया या काफ़िर जैसा व्यवहार करता है। इसी सिद्धांत को इस्लामी स्टेट जम कर लागू कर रहा है। अतः मुसलमानों द्वारा मुसलमानों को मारने में भी वही दूसरों को बर्दाश्त न करने का उसूल ही है।

ध्यान दें, यह कोई बददिमागी नहीं, एक पक्का उसूल है। कि जो मुसलमान है, उसे मुसलमान बने रहना होगा। यही कथित रूप से ईश्वरीय इस्लामी कानून है। यानी, किसी मुसलमान को भी यह अधिकार नहीं कि इस्लामी विश्वासों, कायदों और आदेशों पर सोच-विचार करे। उस के पालन पर स्वयं कुछ तय करे। उस के और सब के लिए यह सब चौदह सौ साल पहले ही सदा के लिए तय किया जा चुका है। इसीलिए इस्लाम पर शंका करने वाले मुसलमान लेखकों, कवियों की हत्याएं होती हैं या उन्हें मार डालने के फतवे दिए जाते हैं। मशाल खान की हत्या उसी क्रम में है।

क्या सोचना नहीं चाहिए कि ऐसे मजहब का क्या अर्थ है, जो दिमाग को स्थाई रूप से बंद रखने की माँग करता हो ? दूसरी ओर, यदि पाकिस्तान के उक्त कानून की तरह ईसाई, बौद्ध, हिन्दू, आदि भी वैसा ही तय करने लगें कि ईसा, बुद्ध या चैतन्य महाप्रभु के अलावा किसी को पैगंबर मानना मृत्युदंड का अपराध है, तो मुसलमान क्या करेंगे ? तब उन्हें भी या तो ईसाई, बौद्ध, आदि बनना पड़ेगा, या मरना होगा। क्या ऐसे कानून पागलपन नहीं कहलाएंगे ? लेकिन, तब जो चीज बौद्ध या ईसाई समाज में अकल्पनीय है, उसे मुसलमान अपने समाज में क्यों उचित ठहराते हैं ?

आज दुनिया के करोड़ों मुसलमान भारत, इंग्लैंड, अमेरिका, रूस, चीन, आदि देशों में रहते हैं जहाँ उन्हें सोच-विचार की, कोई भी धर्म मानने या न मानने, उस की आलोचना करने की समान स्वतंत्रता है। तब यही स्वतंत्रता मुस्लिम समाजों में भी होनी ही चाहिए। यह दोहरापन अधिक समय तक नहीं चल सकता। इस पर मुसलमानों द्वारा चुप्पी रखने से कोई लाभ नहीं है।

यूरोप, अमेरिका या भारत में गैर-मुस्लिम लोग धीरे-धीरे यह दोहरापन अच्छी तरह समझ रहे हैं। कि मुस्लिम समुदाय दूसरों से जो लाभ अपने लिए लेता है, वही अधिकार दूसरों को देने के लिए तैयार नहीं है। यही नहीं, स्वयं अपने समुदाय के अंदर भी वह जोर-जबर्दस्ती, हिंसा द्वारा इस्लामी वर्चस्व बनाए रखता है। इस के सिवा उस के लिए सभी मुद्दे गौण हैं। अतः यह केवल समय की बात है कि मुसलमानों को आँखें मिलाकर इस का जबाव देना पड़ेगा कि वे बराबरी से दूसरे समुदायों के साथ रहना चाहते हैं या नहीं ? इस में इस्लाम उन की कोई मदद नहीं कर सकता। क्योंकि इस्लाम की पूरी परिकल्पना दूसरों को मिटा देने और सारी दुनिया को इस्लामी बनाने की है। उस में दूसरों के साथ समान सह-अस्तित्व जैसी

कोई चीज ही नहीं है। इसीलिए जिहाद, आतंकवाद, खुमैनी जैसे अंतहीन फतवे और मशाल खान जैसी हत्याएं हैं।

लेकिन यह इस्लाम की ताकत नहीं, भारी दुर्बलता है कि वह अपने लोगों से भी हिंसा के बल पर इस्लाम का पालन करवाता है। ऐसे मजहब का वास्तविक मूल्य ही मुसलमानों के सोचने का विषय है। मशाल खान को मार डालने से वह दुर्बलता छिप नहीं सकती, बल्कि और उजागर होती है। दुनिया में किसी एक मजहबी एकाधिकार की धारणा आज वैसे भी हास्यास्पद हो चुकी है। फिर, जो मजहब स्वयं अपने अनुयायियों के बीच भी केवल हिंसा के बल पर खड़ा हो, उस की वास्तविक स्थिति स्वतः स्पष्ट है।

साभार- <http://www.nayaindia.com> से